

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 4 अध्याय 28: पुरज्जन का जागरण

21 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



अन्ततः भूला हुआ मित्र प्रकट होता है: विवेकी ब्राह्मण — भीतर भगवान्, हृदय के दो हंसों में से दूसरा — शोकाकुल आत्मा के पास आता है और उसे इस स्मृति के लिए जगाता है कि वह वस्तुतः कौन है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञप्ति में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में, काल की शक्तियों — वृद्धावस्था, भय, तथा ज्वर — ने पुरज्जन की नौ द्वारों वाली नगरी को घेर लिया, और उसकी रक्षा-पंक्तियाँ अब टिक न सकीं। यह अष्टाविंश अध्याय पुरज्जन की कथा को उसके गहन समापन तक ले आता है। अन्ततः अभिभूत होकर, पुरज्जन सब कुछ

खो देता है, और मृत्यु के क्षण में वह भगवान् के बारे में नहीं बल्कि अपनी पत्नी तथा सन्तानों के बारे में सोचता है — और वही अन्तिम आसक्ति उसके अगले जन्म को गढ़ती है: वह एक स्त्री के रूप में पुनर्जन्म लेता है। उस जीवन में भी, वह प्रेम तथा हानि में बँधी है, जब तक कि, अपने पति की चिता के पास शोक करती हुई, वह एक ऐसे पुराने मित्र से न मिले जिसे वह पूर्णतः भूल चुकी थी — एक विवेकी ब्राह्मण जो उसके अज्ञात साथी, हृदय में साक्षी रूप में विराजमान भगवान्, के अतिरिक्त कोई नहीं। वह कोमलता से सम्पूर्ण अन्योक्ति का अनावरण करता है, हृदय में साथ रहने वाले दो हंसों के रूप में उनकी शाश्वत पहचान प्रकट करता है, और आत्मा को उस स्मृति के लिए जगाता है जिसे वह खो चुकी थी। इस प्रकार कथा मुक्ति में समाप्त होती है, और नारद कथा से मुड़कर राजा प्राचीनबर्हि को सीधे परामर्श देते हैं। यह हमारे अन्तिम विचार की गढ़ने वाली शक्ति का, और उस मित्र की करुणा का अध्याय है जिसने हमें कभी नहीं छोड़ा, जो हमें इस बात के लिए जगाने की प्रतीक्षा करता है कि हम कौन हैं।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 4 (चतुर्थ स्कन्ध)
- अध्याय: 28 (अष्टाविंश अध्याय)
- अध्याय का शीर्षक: पुरञ्जन का पुनर्जन्म तथा अपने अज्ञात मित्र द्वारा जागरण
- मुख्य वक्ता: देवर्षि नारद, राजा प्राचीनबर्हि को अपनी कथा का समापन करते हुए (मैत्रेय के विदुर को उपदेश के भीतर)
- मुख्य श्रोता: राजा प्राचीनबर्हि (तथा विदुर)
- मुख्य स्थल: पुरञ्जन की नगरी का अन्त, उसका अगला जन्म, तथा चिता के पास जागरण (कथा के भीतर)
- केन्द्रीय विषय: पुरञ्जन की मृत्यु तथा पुनर्जन्म, और अज्ञात मित्र द्वारा आत्म-ज्ञान के लिए उसका जागरण
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 4, अध्याय 28, श्लोक 1-65
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 27 ने बताया कि कैसे काल की शक्तियों ने पुरञ्जन की नगरी को घेरा, कैसे वृद्धावस्था (कालकन्या) भय तथा ज्वर से जुड़ी, और कैसे प्राण-वायु का सर्प क्षीण हुआ। यह अष्टाविंश अध्याय घेरे को पूर्ण करता है और आत्मा का मृत्यु के पार अनुगमन करता है — एक नए जन्म से होकर और, अन्ततः, उस जागरण तक जिसकी ओर सम्पूर्ण कथा ले जा रही थी।

पुरञ्जन का पतन

कालकन्या, वृद्धावस्था, से आलिङ्गित होकर, पुरञ्जन ने अपना समस्त सौन्दर्य खो दिया; दीन तथा इन्द्रिय-सुख को समर्पित, उसका विवेक गया तथा उसका ऐश्वर्य छिन गया, अन्ततः वह गन्धर्वों तथा यवनों द्वारा बलपूर्वक परास्त हुआ। उसकी नगरी जल उठी, उसके रक्षक गिर पड़े, और उसका एकत्र किया सब कुछ उसके हाथों से सरक गया।

कन्योपगूढो नष्टश्रीः कृपणो विषयात्मकः ।
नष्टप्रज्ञो हृतैश्वर्यो गन्धर्वयवनैर्बलात् ॥ ६ ॥

*kanyopagūḍho naṣṭa-śrīḥ kṛpaṇo viṣayātmakaḥ naṣṭa-prajñō hṛtaiśvāryō gandharva-yavanair
balāt*

अर्थ: वृद्धावस्था ने उसका सारा सौन्दर्य छीन लिया, उसके मन को इन्द्रिय-भोग की लालसा का दास बना दिया, उसकी बुद्धि नष्ट कर दी और उसका कोष रिक्त कर दिया — यहाँ तक कि गन्धर्वों तथा यवनों ने मिलकर उसे बलपूर्वक तोड़ दिया। (स्कन्ध 4, अध्याय 28, श्लोक 6)



अन्ततः काल की शक्तियों से अभिभूत होकर, पुरञ्जन अपना सौन्दर्य, विवेक, तथा समस्त सम्पत्ति खो देता है, और जैसे मृत्यु निकट आती है वह स्वयं भय द्वारा पकड़ा जाता है (श्लोक 1-22)।

अन्तिम विचार तथा नया जन्म

मृत्यु के निकट आने पर भी, पुरञ्जन ने अपना मन भगवान् की ओर नहीं मोड़ा। इसके बजाय, एक दीन तथा शोकाकुल हृदय से, उसने उस पत्नी तथा सन्तानों पर शोक किया जिन्हें वह छोड़ रहा था — वही आसक्तियाँ जिन्होंने उसे बाँधा था। और जैसे उसने उस पर शोक किया जिस पर उसे नहीं करना चाहिए था, यवनराज नामक भय उसे पकड़ने निकट आया।

एवं कृपणया बुद्ध्या शोचन्तमतदर्हणम् ।
ग्रहीतुं कृतधीरेनं भयनामाभ्यपद्यत ॥ २२ ॥

*evaṁ kṛpaṇayā buddhyā śocantam atad-arhaṇam grahītum kṛta-dhīr enaṁ bhaya-
nāmābhyapadyata*

अर्थ: इस प्रकार संकीर्ण, स्वार्थपूर्ण मन से उस पर विलाप करते हुए जिस पर किसी विवेकी को शोक नहीं करना चाहिए, उसने पाया कि यवनराज भय पहले से ही उसे पकड़ने के लिए दृढ़ संकल्प लेकर निकट आ चुका है। (स्कन्ध 4, अध्याय 28, श्लोक 22)

क्योंकि उसका अन्तिम विचार अपनी पत्नी का था, न कि भगवान् का, वही अन्तिम आसक्ति उसके अगले जन्म को गढ़ गई। पुरञ्जन ने पुनः जन्म लिया — इस बार एक स्त्री के रूप में, विदर्भ के राज्य की एक राजकुमारी — और समय पर एक धर्ममय राजा, मलयध्वज, से विवाहित हुई। उस जीवन में भी, उसने अपने पति से प्रेम किया तथा उसकी सेवा की और उसकी सन्तानें जनीं।

किन्तु एक समर्पित गृहस्थ की कथा भी घर में ही समाप्त नहीं होती। जब उनके पुत्र बड़े हो गए, मलयध्वज ने अपना सम्पूर्ण राज्य उनमें बाँट दिया और अकेले ही कुलाचल नामक एकान्त वन में चले गए, ताकि बिना किसी विक्षेप के भगवान् की आराधना कर सकें। वहाँ उन्होंने प्रतिदिन पवित्र नदियों में स्नान किया, केवल कन्द, मूल, फल तथा पत्तों पर निर्वाह किया, और दीर्घ तपस्या से क्षीण होते गए, धीरे-धीरे शीत-उष्ण, क्षुधा-तृषा, तथा सुख-दुःख के द्वन्द्वों पर विजय पाते हुए, यहाँ तक कि इनमें से कोई भी उन्हें विचलित न कर सका। इस प्रकार शुद्ध होकर, उन्होंने अन्ततः हृदय में अपनी आत्मा के पार्श्व में विराजमान परमात्मा को देखा, जो शरीर से भी भिन्न था और स्वयं से भी भिन्न — और स्वयं भगवान् ने उन्हें साक्षात् गुरु के रूप में उपदेश देना आरम्भ किया, उनकी समझ को सभी दिशाओं से आलोकित करते हुए।

साक्षाद्भगवतोक्तेन गुरुणा हरिणा नृप ।

विशुद्धज्ञानदीपेन स्फुरता विश्वतोमुखम् ॥ ४१ ॥

sākṣād bhagavatoktena guruṇā hariṇā nṛpa viśuddha-jñāna-dīpena sphuratā viśvato-mukham

अर्थ: अपनी तपस्या से शुद्ध होकर, मलयध्वज को स्वयं भगवान् हरि ने साक्षात् उपदेश दिया, जो उनके समक्ष गुरु के रूप में प्रकट हुए और शुद्ध ज्ञान के दीपक से उनकी समझ को सभी ओर से आलोकित किया। (स्कन्ध 4, अध्याय 28, श्लोक 41)

रानी वैदर्भी अपने पति के साथ उस वन में गई थीं और बिना किसी शिकायत के उनकी तपस्या में सेवा करती रहीं, और एक दिन उनके चरण दबाते समय उन्होंने पाया कि वे अब उष्ण नहीं रहे, और समझ गई कि वे पहले ही शरीर त्याग चुके हैं। अकेली छोड़ी गई, वह उनकी चिता के पास रोई, सान्त्वना अस्वीकार करती हुई, मृत्यु में उनका अनुसरण करने को तैयार।



क्योंकि उसका अन्तिम विचार अपनी पत्नी का था, पुरुञ्जन एक स्त्री के रूप में पुनर्जन्म लेता है; उस जीवन में भी वह प्रेम तथा हानि पाती है, और अपने पति की चिता के पास असान्त्वनीय शोक करती है (श्लोक 23-50)।

अज्ञात मित्र प्रकट होता है

तब, उस शोक में, एक पुराना मित्र आया — जिसे आत्मा बहुत पहले जानती थी और पूर्णतः भूल चुकी थी। एक विवेकी तथा आत्म-स्थित ब्राह्मण रोती हुई स्त्री के पास पहुँचा और मधुर तथा कोमल वचनों से उसे सान्त्वना देने लगा। यह उस अविज्ञात के अतिरिक्त कोई नहीं था, कथा के आरम्भ का अज्ञात साथी: हृदय में साक्षी रूप में विराजमान भगवान्, जो आत्मा के समस्त भटकावों में उसके साथ रहे थे, अदृश्य।

तत्र पूर्वतरः कश्चित्सखा ब्राह्मण आत्मवान् ।

सान्त्वयन् वल्गुना साम्ना तामाह रुदतीं प्रभो ॥ ५१ ॥

tatra pūrvataraḥ kaścit sakhā brāhmaṇa ātmavān sāntvayan valgunā sāmna tāṁ āha rudatīm prabho

अर्थ: तब, हे राजन्, एक विशेष ब्राह्मण, पहले से एक आत्म-स्थित पुराना मित्र, वहाँ आया और, मधुर एवं कोमल वचनों से रोती हुई स्त्री को सान्त्वना देते हुए, उससे बोला। (स्कन्ध 4, अध्याय 28, श्लोक 51)

अन्योक्ति का अनावरण

मित्र ने कोमलता से शोकाकुल आत्मा को स्मरण कराया कि वे वस्तुतः कौन थे — दो हंस, समस्त आरम्भ के परे से मित्र, जो साथ रहे थे और फिर तब बिछुड़े जब एक संसार में भटक गया। और उसने अन्ततः कथा का सम्पूर्ण अर्थ अनावृत किया: नौ द्वारों वाली नगरी शरीर थी; उसके उद्यान इन्द्रियों के विषय; उसका रक्षक प्राण-वायु; उसके कक्ष अग्नि, जल, तथा पृथ्वी के तत्त्व; उसका परिवार मन तथा पाँच इन्द्रियाँ।

पञ्चेन्द्रियार्था आरामा द्वारः प्राणा नव प्रभो ।

तेजोऽबन्नानि कोष्ठानि कुलमिन्द्रियसङ्ग्रहः ॥ ५७ ॥

pañcendriyārthā ārāmā dvārah prāṇā nava prabho tejo-'b-annāni koṣṭhāni kulam indriya-saṅgrahaḥ

अर्थ: (मित्र ने समझाया:) पाँच उद्यान इन्द्रियों के पाँच विषय हैं; द्वार नौ छिद्र हैं; प्राण उनके रक्षक; तीन कक्ष अग्नि, जल, तथा पृथ्वी; और परिवार मन तथा इन्द्रियों का समुच्चय। (स्कन्ध 4, अध्याय 28, श्लोक 57)



विवेकी ब्राह्मण — अज्ञात मित्र, भीतर भगवान् — सम्पूर्ण अन्योक्ति का अनावरण करता है, यह प्रकट करते हुए कि नगरी शरीर थी, और कि वह तथा आत्मा दो शाश्वत हंस हैं जो केवल तब बिछुड़े जब एक संसार में भटक गया (श्लोक 51-63)।

यही मित्र की सबसे गहन बात है, और इसे चूक जाना सरल है। वह यह नहीं कहते कि आत्मा तथा भगवान् सर्वथा एक ही हैं; वह कहते हैं कि वे गुण में एक हैं, पूर्णतः आत्मिक, किन्तु परिमाण में कभी एक नहीं — भगवान् पूर्ण तथा सर्वव्यापी, आत्मा उनका अणुमात्र अंश।

यथा पुरुष आत्मानमेकमादर्शचक्षुषोः ।

द्विधाभूतमवेक्षेत तथैवान्तरमावयोः ॥ ६३ ॥

yathā puruṣa ātmānam ekam ādarśa-cakṣuṣoḥ dvidhābhūtam avekṣeta tathaivāntaram āvayoḥ

अर्थ: जैसे मनुष्य दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखकर उसे स्वयं से अभिन्न मानता है, यद्यपि उसके पास खड़ा कोई अन्य व्यक्ति स्पष्ट रूप से दो शरीर देखता है, वैसे ही हम दोनों के बीच है, मित्र: गुण में समान, फिर भी सदा भिन्न। (स्कन्ध 4, अध्याय 28, श्लोक 63)

यही कारण है कि पुरज्जन की सम्पूर्ण त्रासदी सम्भव हो सकी: इसलिए नहीं कि आत्मा असत्य है, बल्कि इसलिए कि वह यह भूल गई कि वह सदा भगवान् की सहचरी तथा सेविका थी, कभी उनकी स्थानापन्न नहीं, और इसीलिए उसने शरीर की नगरी को अकेले शासित करने का प्रयत्न किया।

जागरण

जैसे आत्मा ने सुना, सत्य उस पर प्रभात की भाँति टूटा। मन का हंस, व्यष्टि आत्मा, दूसरे हंस — भगवान् — द्वारा जगाया गया, अन्ततः अपने ही सच्चे स्वरूप में विश्राम पाया, और वह स्मृति पुनः प्राप्त की जिसे उसने पदार्थ में अपने समस्त लम्बे भटकाव से खो दिया था। भूलना समाप्त हुआ; आत्मा ने स्वयं को, तथा अपने मित्र को, पुनः जाना।

एवं स मानसो हंसो हंसेन प्रतिबोधितः ।

स्वस्थस्तद्व्यभिचारेण नष्टामाप पुनः स्मृतिम् ॥ ६४ ॥

evam sa mānaso haṁso haṁsena pratibodhitaḥ sva-sthas tad-vyabhicāreṇa naṣṭām āpa punaḥ smṛtim

अर्थ: दूसरे हंस के बोध से जागकर, हृदय के इस हंस — व्यष्टि जीव — ने अपनी वास्तविक स्थिति फिर से पहचान ली, और पदार्थ में उसके दीर्घ भटकाव से जो पहचान लुप्त हो गई थी, वह उसे पुनः लौट आई। (स्कन्ध 4, अध्याय 28, श्लोक 64)



अपने शाश्वत मित्र द्वारा जगाया गया, आत्मा — मन का हंस — अपने ही सच्चे स्वरूप में विश्राम पाती है, अपनी खोई स्मृति पुनः प्राप्त करते हुए, और हृदय के दो हंस पुनः एक हो जाते हैं (श्लोक 64-65)।

इस प्रकार पुरज्जन की लम्बी कथा जलती नगरी में नहीं बल्कि मुक्ति में समाप्त होती है — आत्मा, उस मित्र की करुणा से जिसे वह भूल गई थी, स्वयं में पुनर्स्थापित। इसके साथ नारद ने कथा समाप्त की, और राजा प्राचीनबर्हि से सीधे बात करने मुड़े, जैसे अगला अध्याय जारी रखेगा।

इस अध्याय को प्रमुख शिक्षाएँ

1. हमारा अन्तिम विचार गढ़ता है कि आगे क्या आता है। पुरज्जन अपनी पत्नी में लीन मरता है, भगवान् में नहीं, और वही अन्तिम आसक्ति उसका अगला जन्म गढ़ती है। जिसे हम अन्त में पकड़ते हैं वहीं हमारा हृदय हमें ले जाता है; इसलिए बुद्धिमान् अभी भगवान् को स्मरण करने का अभ्यास करते हैं (श्लोक 22)।
2. आसक्ति मृत्यु से भी परे पहुँचती है। वही बन्धन जिन्हें छोड़ने पर पुरज्जन ने शोक किया, उसे पुनः बाँध लेते हैं: एक पशु की भाँति पकड़ा और घसीटा गया, उसके शोकाकुल अनुयायी उसके पीछे जाने को विवश, वह मृत्यु की देहरी उन्हीं बेड़ियों को पहने हुए पार करता है जिन्हें उसने कभी ढीला नहीं किया (श्लोक 22-23)।
3. भीतर भगवान् आत्मा को कभी नहीं त्यागते। प्रत्येक भटकाव, जन्म, तथा भूलने के बीच, अज्ञात मित्र — हृदय में भगवान् — आत्मा के साथ रहते हैं, प्रतीक्षा करते हुए। हम कभी सचमुच अकेले नहीं, हम चाहे कितना ही भटके (श्लोक 51)।
4. मुक्ति स्मरण है, अर्जन नहीं। आत्मा को कोई नई वस्तु नहीं दी जाती; वह उस स्मृति को पुनः प्राप्त करती है जिसे उसने खोया था। स्वतन्त्रता इस बात के लिए जागना है कि हम सदा से कौन थे — हंस के पार्श्व में हंस, भगवान् के पार्श्व में आत्मा (श्लोक 64)।
5. सम्पूर्ण संसार पढ़ने योग्य एक अन्योक्ति है। मित्र नगरी, उद्यानों, द्वारों को शरीर, इन्द्रियों, तथा छिद्रों के रूप में अनावृत करता है। सही रूप से समझा जाए, तो हमारा सम्पूर्ण जीवन एक कथा है, जिसका अभिप्राय हमें भीतर के उस एक की ओर वापस ले जाना है (श्लोक 57)।
6. भगवान् के निकट होना उनके समान होना नहीं है। दर्पण के प्रतिबिम्ब की भाँति, आत्मा तथा परमात्मा भीतर से देखने पर एक प्रतीत होते हैं, फिर भी, जैसा मित्र कहता है, सदा दो ही रहते हैं। भक्ति ठीक उसी स्थान में जीवित रहती है — एक ऐसी निकटता जो कभी समानता का दावा नहीं करती (श्लोक 63)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

यही वह अध्याय है जिसकी ओर सम्पूर्ण कथा बढ़ रही थी, और इसका सौन्दर्य शान्त तथा विशाल है। अनेक अध्यायों से हमने आत्मा को, पुरज्जन के रूप में, भटकते तथा भूलते देखा है — इन्द्रियों से मोहित, अपने गृहस्थ में उलझी, काल से घिरी, और अन्ततः उन्हीं आसक्तियों को पकड़े मरती जिन्होंने उसे बाँधा, ताकि वह असहाय रूप से एक और बद्ध जीवन में ले जाई जाए। यह एक गम्भीर चित्र है कि भूलना कितना गहरा जाता है, और वह हमें कितना दूर ले जा सकता है। और फिर, गहनतम शोक में, मित्र प्रकट होता है। बाहर से आने वाला कोई नया उद्धारक नहीं, बल्कि वह पुराना साथी जो सदा वहाँ था — हृदय में विराजमान भगवान्, दो हंसों में से दूसरा, जिसने आत्मा के उन्हें पूर्णतः भूल जाने पर भी कभी नहीं छोड़ा। और जो वह देता है वह अर्जित पुरस्कार नहीं बल्कि पुनर्स्थापित स्मृति है: वह बस आत्मा को स्मरण कराता है कि वह सदा से कौन थी। यही इस उपदेश के केन्द्र में विस्मयकारी कोमलता है। हमारी मुक्ति किसी ऐसी वस्तु की उपलब्धि नहीं जिसका हममें अभाव है, बल्कि किसी ऐसी वस्तु के प्रति जागरण है जो हम पहले से हैं और केवल भूल गए हैं — कि हम हंस के पार्श्व में हंस हैं, अमर आत्मा जो सदा अमर भगवान् के साथ है। और जो मित्र हमें जगाता है वह वही है जिस पर हमने नगरी तथा उसकी रानी का पीछा करते सबसे कम ध्यान दिया, वही जिसने प्रतीक्षा की, धैर्यवान् तथा अदृश्य, प्रत्येक भटकाव के बीच, उस क्षण के लिए जब हमारा शोक अन्ततः हमें उसकी ओर मोड़ देगा।

एक दैनिक भाक्ते-अभ्यास

आज, अपने अन्तिम विचार के लिए अपने वर्तमान विचार को सँवारकर अभ्यास करें। कथा इस पर घूमती है कि अन्त में पुरज्जन का मन कहाँ ठहरा — और अन्त अनगिनत वर्तमान क्षणों का ही योग है। अतः, आज कई बार, कोमलता से अपना ध्यान भीतर के भगवान्, अज्ञात मित्र, की ओर लौटाएँ, इन शब्दों के साथ — “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय”, अपने हृदय को अपने ही कर्तव्यों तथा आसक्तियों की “नगरी” के बीच उन्हें स्मरण करने का प्रशिक्षण देते हुए। और कथा की गहनतम सान्त्वना को स्मरण करने के लिए एक शान्त क्षण लें: कि आप जो भी भूल गए हों, और आप जितना भी भटके हों, मित्र ने हृदय को कभी नहीं छोड़ा, और केवल आपको यह स्मरण कराने की प्रतीक्षा करता है कि आप कौन हैं। वहाँ विश्राम करें, संक्षेप में भी — कुछ *बनने* का प्रयत्न किए बिना, बल्कि यह स्मरण करते हुए कि आप पहले से क्या हैं, भगवान् के पार्श्व में आत्मा। अपने वर्तमान विचार को उनकी ओर सँवारने में, आप, कोमलता से तथा प्रतिदिन, उस जागरण के लिए तैयार होते हैं जिसका सम्पूर्ण कथा वचन देती है।

उपसंहार

पुरज्जन के आख्यान का यह अन्तिम अध्याय एक कठोर पतन से आरम्भ होकर एक शान्त जागरण पर जा पहुँचता है। वृद्धावस्था, भय, तथा ज्वर के प्रहार से टूटकर, पुरज्जन अपना सब कुछ गँवा बैठता है, और अन्त में पत्नी-सन्तानों के शोक में डूबा, भगवान् को भुलाए हुए, यवनराज भय के हाथों बँधकर पशु-सम घसीटा जाता है — और यही अन्तिम आसक्ति उसे अगले जन्म में स्त्री-शरीर दिलाती है: विदर्भ की राजकुमारी, जो भक्त राजा मलयध्वज की पत्नी बनती है। वर्षों की सेवा के पश्चात् मलयध्वज वन में तपस्या करने चले जाते हैं और वहाँ स्वयं भगवान् से साक्षात् उपदेश पाकर शरीर त्याग देते हैं; अकेली पड़ी रानी उनकी चिता के समीप शोक में डूब जाती है, तभी एक भूला हुआ पुराना मित्र — वस्तुतः हृदयस्थ भगवान् — प्रकट होकर उसे नगरी, द्वारों, तथा उद्यानों के रूप में सम्पूर्ण अन्योक्ति समझाता है, यह स्मरण कराते हुए कि आत्मा तथा परमात्मा दर्पण के प्रतिबिम्ब समान गुण में एक किन्तु सदा पृथक् हैं। इस स्मरण से जागृत होकर आत्मा अपनी खोई हुई पहचान पुनः पा लेती है, और इसी उपलब्धि के साथ नारद अपनी कथा को विराम देकर राजा प्राचीनबर्हि को सीधे सम्बोधित करने की ओर मुड़ते हैं। यह अध्याय सिखाता है कि अन्तिम विचार भावी जन्म को गढ़ता है, कि आसक्ति मृत्यु के पार भी पीछा नहीं छोड़ती, और यह कि मुक्ति कोई नवीन उपलब्धि नहीं बल्कि उस भूली हुई निकटता की पुनःस्मृति है, जो भगवान् और जीव के बीच आदि से विद्यमान रही है।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, *श्रीमद्भागवत महापुराण* (अंग्रेज़ी, पूर्ण), चतुर्थ स्कन्ध, अष्टाविंश अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान् पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा किसी सम्बद्धता या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-4-chapter-28-puranjana-reborn-and-awakened-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

